चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१२३

--*--

पण्डितश्रीसरयूप्रसादद्विवेदविरचितम्

आगमरहस्यम्

(शैवागमान्तर्गतम्)

'सुधा' हिन्दीव्याख्योपेतम्

(पूर्वार्द्धम्)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम.ए., पीएच.डी., साहित्याचार्यः,

निदेशकः

महामना संस्कृत अकादमी

(लब्धावकाशः) संस्कृत विभागः, कलासङ्कायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

उसकी टीका राघवभट्ट की सत्सम्प्रदायकृत् 'पदार्थादर्श' से सहायता ली है । अनेक सन्दर्भों में मुख्यरूप से 'कुलार्णवतन्त्र' एवं 'ज्ञानार्णवतन्त्र' तथा 'मन्त्र-महोदधि' से सहायता ली गयी है । इस प्रकार तन्त्रगत मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन अत्यन्त सरल रूप से प्रस्तुत किया गया है । तृतीय पटल में माया के आवरण से आच्छन्न सभी देवताओं के गर्वों (अहङ्कार) को समाप्त कर देने के सन्दर्भ का सङ्कलन मुझे प्रथम बार एक स्थान पर देखने को मिला । इनमें कुछ के आख्यान मुझे स्वयं भी मालूम नहीं है । इन्हें खोजकर अलग से एक स्थान पर आख्यान सहित सङ्कलन करना चाहिए । शरभावतार द्वारा भगवान् शङ्कर ने भगवान् नृसिंह के अहङ्कार का शमन किया था । यह विषय 'आकाशभैरवकल्प' में आया है । पीताम्बरापीठ, दतिया के स्वामीजी जिस प्रकार शास्त्रज्ञ एवं साधक दोनों ही थे, उसी प्रकार आचार्य द्विवेदीजी को भी माँ दुर्गा इष्ट थीं और वे शास्त्रज्ञ तथा साधक दोनों थे ।

आगमरहस्य का विषय विवेचन

प्रथम पटल में सृष्टि निरूपण है । मङ्गलाचरण तथा गुरु के प्रणामानन्तर जयपुर के महाराज रामसिंह को आशीर्वाद देकर ग्रन्थकार ने अपने आश्रयत्व के लिए कृतज्ञता व्यक्त की है । शैव, शाक्त एवं वैष्णव आगम सम्प्रदाय का अवलोकन कर इस आगमरहस्य की रचना की गई है । इस पटल में पहले सम्पूर्ण ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है । फिर सृष्टिभेद, तत्त्व-निरूपण, तत्त्वभेद, नादसृष्टि, कुण्डली एवं देवी से विन्दु सृष्टि आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय पटल में वर्ण और उसकी अभिव्यक्ति तथा प्रणव के अङ्ग पञ्चकला भेद का प्रतिपादन है । वर्णों का शिवशक्तिमयत्व का प्रतिपादन करके उन मातृका वर्णों की पञ्चभूतात्मकता एवं सोमसूर्याग्निभेद का विधान किया गया है । प्रणव की पचास कलाएँ और उनकी उत्पत्ति का निरूपण है । मन्त्रों का अग्नीषोमात्मकत्व एवं उनके प्रबोध के काल का वर्णन है ।

तृतीय पटल में बीज से उत्पन्न होने वाली सृष्टि और कर्म से उत्पन्न हुए इस आत्मायतन देह का तथा उस शरीर का मिथ्यात्व एवं मोह की महत्ता का वर्णन है। इसलिए मनुष्य को उपासना में प्रवृत्त होना चाहिए । यहीं पर चार प्रकार की भक्ति का भी वर्णन है ।

चतुर्थ पटल में मोक्षरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए दीक्षा की आवश्यकता और मन्त्रग्रहण आदि विषयों का प्रतिपादन है । दीक्षा शब्द के अर्थ का विवेचन कर अदीक्षित का सारा कर्म व्यर्थ कहा गया है । अतः जप का मूल दीक्षा है और

तप भी दीक्षामूलक ही है । पत्थर पर बीज बोने का कोई फल नहीं । अतः गुरु से दीक्षा ग्रहण करे । गुरु शब्द का अर्थ और गुरु के लक्षणों को कहकर निन्दित शिष्य के लक्षण कहे गए हैं । गुरु और शिष्य की परीक्षा न करने से दोष बतलाए गए हैं । दीक्षा देने के लिए पिता अधिकारी नहीं है किन्तु माता दीक्षा देने के लिए प्रशस्त कही गई है । इसी सन्दर्भ में स्त्री का गुरु बनाने के विषय में विचार और बिना गुरु बनाए मन्त्र-ग्रहण पर विचार किया गया है । अपने देश में उत्पन्न गुरु के गुण एवं दोष पर विचार, गुरु का धर्म और मन्त्र प्रदान में दीक्षा देने का फल कहा गया है । अपने नाम वाले गुरु का निषेध तथा शूद्र को दीक्षा देने का विचार प्रस्तुत किया गया है ।

शूद्र जाति के साधक को गोपाल मन्त्र एवं महेश्वर मन्त्र देना चाहिए । उसकी पत्नी को सूर्य या गणेश का मन्त्र दिया जा सकता है । फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वर्णपरक मन्त्रों के नियम बतलाए गए हैं और सिद्ध साध्यादि शुद्धि से रहित मन्त्रों का विवेचन है । फिर काली, तारा आदि दस सिद्ध विद्याओं का निर्देश है जिनके मन्त्र में सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं होती है । गुप्त रूप से दीक्षा लेने की विधि का वर्णन करते हुए अश्वत्थ एवं वट आदि के पत्र पर मन्त्र लिखने का निर्देश किया गया है । मन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा के बाद ही उसे ग्रहण किया जाता है। दीक्षा के विषय में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण काल प्रशस्त माना जाता है । इस समय नक्षत्र एवं राशि आदि विचार भी नहीं किया जाता । उत्तम शाक्त साधक को सभी काल में पूजा करनी चाहिए । उसे जननाशौच और मरणाशौच का भी विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि मन्त्रज्ञ साधक का अन्तर्याग निरन्तर चलता रहता है ।

पञ्चम पटल में श्रीगुरु के प्रति आचार का निरूपण किया गया है । बिना गुरु की आज्ञा के कोई कर्म न करे । यात्रा, पूजन एवं भोजन आदि भी गुरु की आज्ञा लेकर ही करे । परातन्त्र के अनुसार गुरु की पूजा का विधान किया गया है । गुरु की नित्य पूजा से माता त्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होती हैं । शिष्य द्वारा गुरु के समीप में रहकर सदाचार का पालन करना चाहिए । शिष्य के घर गुरु के पधारने पर उसका वह दिन सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के समान पुण्यकाल वाला हो जाता है ।

षष्ठ पटल में उपासना के क्रम का विवेचन है । ब्रह्म वस्तुतः निर्गुण है । किन्तु उनके शरीर की कल्पना उपासकों के कार्य के लिए की गई है । शक्ति एवं शक्तिमान् के भेद की कल्पना फल की दृष्टि से की गई है । किन्तु तत्त्वदर्शी योगीजन उनमें अभेद का ही दर्शन करते हैं । पुरुष रूप में दशावतार तथा स्त्रीरूपा भगवती में अभेद सम्बन्ध है । ईश्वर की प्रशंसा से न दुःख ही होता है और न तो सुख ही होता है । सृष्टि मात्र में महामाया की ही सत्ता है । केवल नाम से ही उनमें भेद प्रतीत होता है ।

पाँच प्रकार की प्रकृति का विवेचन करके दस विद्या के क्रम का विवरण दिया गया है । फिर अन्य छह विद्याओं को मिलाकर कुल सोलह महाविद्याएँ कही गई हैं । दसों महाविद्याओं के दस भैरवों का भी निर्देश किया गया है । इन दस विद्याओं के प्रादुर्भाव का वर्णन शक्तिसङ्गमतन्त्र के अनुसार कहा गया है । काली तारा आदि दस महाविद्याओं के उत्पत्ति की कथा बताकर उनके अङ्ग भेद भी बताए गए हैं । भादों मास की चतुर्थी तिथि को गणेश की उत्पत्ति कही गई है । इसी प्रसङ्ग में पुरुष एवं प्रकृति में अभेद सम्बन्ध बताया गया है । आद्या ललिता ने पुरुष रूप में कृष्ण रूप धारण कर वेणुवादन किया था । आद्या तारा ने पुरुष रूप से श्रीराम का रूप धारण कर समुद्र आदि का निग्रह किया था । इसी प्रकार छिन्नमस्ता ने नृसिंह रूप धारण किया । भुवनेश्वरी ने वामन रूप और सुन्दरी परशुराम हो गई, धूमावती मीन बन गई, बगलामुखी ने कूर्म रूप धारण किया और भैरवी ने बलभद्र रूप में अवतार लिया, महालक्ष्मी बौद्धरूप में अवतरित हुई और आगे दुर्गा कल्कि रूप में अवतार लेंगी । इसलिए शक्ति ही सबका मूल होने से और कोमल अन्त:करण होने से तथा भुक्ति-मुक्ति दोनों प्रदान करने के कारण शक्ति ही सर्वार्थसाधिका कही गई है ।

सातवें पटल में प्रात:कृत्य का निरूपण किया गया है । ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर गुरु एवं देवता का ध्यान करना चाहिए । मन्त्र स्नान आदि बताकर मानस पूजा का क्रम बतलाया गया है । श्री गुरुस्तोत्र का विधान करके इडा आदि नाडी का स्वरूप बतलाया गया है । नाडियों में मेरुदण्ड सबसे प्रधान है । इडा नाडी चन्द्ररूपिणी है और पिङ्गला सूर्यविग्रहा है । क्रमश: दोनों शक्ति एवं पुरुष स्वरूपा हैं । सुषुम्णा नाडी अग्निस्वरूपा है । षट्चक्रों का निरूपण करते हुए उनके पद्मों को ऊर्ध्वमुख बतलाया गया है । इन्हीं षट्चक्रों में पञ्चमहाभूत की स्थिति का वर्णन है ।

इसके बाद कुण्डलिनी योग का वर्णन किया गया है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और परशिव—ये छह शिवसंज्ञक हैं । डाकिनी, राकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी और हाकिनी—ये छह उन शिवों की शक्तियाँ हैं । षट्चक्र के ऊपर ऊर्ध्व चक्र में सदाशिव का निवास है । सदाशिव के ऊपर महाशक्ति का स्थान है । इसीलिए साधक हंस रूप अजपा जप का जप करते हैं। संसार यात्रा के लिए प्रार्थना मन्त्र का विधान किया गया है । अजपा गायत्री मुनियों को मोक्ष देने वाली है । शारदातिलक के अनुसार अजपा मन्त्र का उद्धार एवं ध्यान बतलाया गया है । अन्त में पृथिवी के प्रणाम मन्त्र एवं शौच कर्म का निरूपण है ।

आठवें पटल में स्नानादि कर्म का निरूपण किया गया है । स्नान क्रिया

आन्तरिक एवं बाह्य होती है । तीर्थ के अभाव में स्नान की विधि तथा शैव एवं वैष्णव भेद से तिलक लगाने की विधि का निरूपण है । तान्त्रिक सन्ध्योपासन एवं त्रिकाल गायत्री का ध्यान कहा गया है । सन्ध्या भङ्ग होने पर प्रायश्चित्त बतलाया गया है । आचमन के लिए कितना प्रमाण जल अपेक्षित है? यह कह कर आचमन का फल बतलाया गया है । सामान्यार्घ्य विधि, द्वारपूजा विधि और देवताओं के द्वारपाल का विधान है । भूतोत्सारण करके याग मण्डप में प्रवेश की विधि एवं पूजा कही गई है ।

नवम पटल में भूतशुद्धि का विवेचन है । प्राणप्रतिष्ठा विधि एवं उसका मन्त्र कहकर षडङ्गन्यास का विधान है । अर्घस्थापन की विधि, विभिन्न प्रकार के शंख के लक्षण और अन्तर्याग का क्रम बतलाया गया है । पीठपूजा एवं प्रतिमा पूजा का नियम बताकर सूर्य, दुर्गा आदि पञ्चायतन के देवताओं की स्थिति व्यवस्था दी गई है। विभिन्न उपचार के मन्त्रों का विवेचन है । पुष्प आदि के ग्राह्याग्राह्य नियम का कथन है । पुष्पों के निर्माल्य का कथन है । दिक्पाल के मन्त्र का उद्धार करके दिक्पाल की मुद्रा का विधान है । धूप, दीप, नैवेद्य की विधि बताकर प्राणादि पाँच मुद्राओं का कथन है । वैश्वदेव बलि बताकर देवताओं के उच्छिष्ट-भोजी के नाम बतलाए गए हैं । शिव इत्यादि विभिन्न देवताओं की प्रदक्षिणा कैसे करनी चाहिए? इसका विधान है । जैसे शिव की अर्धचन्द्राकार रूप से अर्ध परिक्रमा होती है । ब्रह्मार्पण मन्त्र कथन के बाद पञ्चधा-पूजा देवता के भेद से बतलाई गई है ।

दशम पटल में न्यासों का माहात्म्य और भूतशुद्धि से पाप पुरुष के अपसारण का विधान है । मातृकान्यास और उसकी विधि, अन्तर्मातृकान्यास तथा बहिर्मातृकान्यास का कथन है । गृहस्थ, यति आदि आश्रमपरक सृष्ट्यादि न्यास का क्रम एवं मातृका के भेद तथा काम्य मातृकाओं को कहा गया है । त्रिमधु का लक्षण, दशविध मातृकान्यास, प्राणायाम की विधि और उपासना-भेद से मातृका-न्यास का विधान है । इसी सन्दर्भ में श्रीकण्ठमातृका न्यास, केशवादि मातृका न्यास तथा गणेशमातृका न्यास एवं शक्तिन्यास में कलादि का न्यास विवेचित किया गया है । पीठमातृकान्यास, ऋष्यादिन्यास तथा षडङ्गन्यास एवं उनका प्रयोजन कहा गया है ।

एकादश पटल में जपमाला का और मन्त्र एवं यन्त्र के संस्कार का प्रतिपादन है । मन्त्रों के दस संस्कार करके तब उनका जप किया जाता है, मन्त्रदोष की निवृत्ति के लिए योनिमुद्रा का कथन है । मन्त्र शोधन के अन्य प्रकार को बताकर माला के संस्कार का विस्तृत विवेचन है । पहले वर्ण (मातृका) माला, करमाला तथा अक्षमाला के भेद कहे गए हैं । देवविशेष में मणियों की

माला का प्रयोग बतलाया गया है । माला के संस्कार का काल तथा माला गूँथने की विधि का विस्तार से वर्णन है । अक्ष में मुख और पुच्छभाग का निर्णय तथा माला की प्रतिष्ठा का विधान है । फिर पञ्चगव्य में उसकी पूजा कर मालाशोधन के मन्त्र का विवेचन है । उपांशु आदि जपविधि का प्रतिपादन कर गोमुखी के लक्षण बतलाए गए हैं । मालामन्त्र का विधान एवं प्रतिष्ठित माला से जप की विधि वर्णित है । अन्त में यन्त्र का संस्कार, यन्त्र का स्थापन तथा उस यन्त्र की पूजाविधि का विवेचन है ।

द्वादश पटल में पुरश्चरण के स्थान का निर्णय तथा कूर्मचक्र में दीपस्थापन की विधि और पुरश्चरण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रयोगों के अनुसार मृगचर्मादि आसनों का विधान है । जप का लक्षण, मन्त्र एवं देवता में अभेदज्ञानपूर्वक पुरश्चरण करे । मन्त्रस्थान तथा मन्त्रचैतन्य का निरूपण है । योनिमुद्रा एवं मन्त्र-शिखा का वर्णन करके जपयज्ञ की विधि में कुल्लुका आदि दस सङ्केत का विधान है । मुखशोधन का कथन और निद्रित मन्त्रों का विवेचन प्रस्तुत है ।

त्रयोदश पटल में पुरश्चरण के नियम बतलाए गए हैं । पुरश्चरण का अनुष्ठान ब्राह्मण भोजनान्त होता है । साधक को निषिद्ध भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सिद्धि में बाधक है । पुरश्चरण काल में दूध, दही, मूँग, केला, नारियल आदि हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए । यहीं पर निषिद्ध शाक का भी विवरण दिया गया है । मधु, ताम्बूल, लहसुन, दिन में भोजन आदि निषिद्ध है ।

दूसरों के द्वारा प्रदत्त अन्न से जो धर्म का सञ्चय होता है उसमें अन्न देने वाले को पुण्य का आधा फल प्राप्त हो जाता है । पुरश्चरण काल में छींक आदि आने पर या अभद्र शब्द निकालने पर 'प्राणायाम' रूप प्रायश्चित्त किया जाता है । बिल्ली, वानर आदि को देख लेने पर आचमन करके जप किया जाता है । इसी संदर्भ में जप के नियम बतलाए गए हैं । एक वस्त्र से मन्त्र का जप न करे और बहुत से वस्त्रों से आच्छादित होकर भी जप न करे । चन्द्रमा एवं नक्षत्र के अनुकूल होने पर जप प्रारम्भ करे । इसी संदर्भ में पुरश्चरण के लिए निषिद्ध मास एवं तिथियों का विधान किया गया है । पुरश्चरण के पूर्व नियमों को कहकर स्वप्नमाणव मन्त्र का विधान है । स्वप्न के शुभ एवं अशुभ फल का कथन है जैसे काम्य कर्म करने पर स्वप्न में यदि स्त्री दिखलाई पड़े तो समृद्धि समझना चाहिए । मन को खेद उत्पन्न करने वाले अशुभ स्वप्न होते हैं । दुःस्वप्न की शान्ति के लिए दन्त काष्ठों से अथवा घृत एवं सिंह मन्त्र से होम कराना चाहिए । पुरश्चरण के लिए नगर आदि से दूर नदी के किनारे स्थान प्रशस्त कहा गया है । वहाँ कुटी का निर्माण करना चाहिए और क्षेत्र को कीलित करके उञ्चास क्षेत्रपालों का पूजन विधि-विधान के अनुसार करना चाहिए ।

चतुर्दश पटल में होम आदि का विधान किया गया है । मन्त्रवेत्ता प्राणायाम करके षडङ्गन्यास करे । फिर बेदी का चार संस्कार करके यन्त्र बनाए । तब पीठ पर पीठशक्तियों आदि को आसन देकर अग्निमन्त्र से अग्नि स्थापन करे । अग्नि मन्त्रोद्धार करके अग्नि की तीन प्रकार की जिह्वाएँ बतलायी गई हैं । अग्निदेव का विधिवत् अर्चन करके आठ भैरवों की पूजा करनी चाहिए । स्रुक् स्रुचा का संस्कार करके अभिद्योतन संस्कार करना चाहिए । इसी सन्दर्भ में तर्पण द्रव्य की फलश्रुति कहकर अभिषेक का विधान है । वह्निचक्र का निरूपण करके काम्य होम में वह्नि की स्थिति का वर्णन है । कामना भेद से अग्नि की जिह्वाओं के फल का कथन है । अन्त में होम द्रव्यों के प्रमाण का विधान करके स्रुवा निर्माण की विधि बतलाई गई है ।

पन्द्रहवें पटल में दमनकपूजा एवं पवित्रार्चा का विधान है । वर्षभर की पूजा का फल प्राप्त करने के लिए यह पूजा चैत्र एवं श्रावण मास में की जाती है । चातुर्मास्य के प्रवेश में दमनक पूजा कर देवों को उसका अर्पण नहीं करना चाहिए । दमनक में कामदेव एवं रति की पूजा होती है । भूपुरयुक्त अष्टदल कमल निर्माण कर अथवा स्वनिर्मित मण्डल (सर्वतोभद्रमण्डल) में बाँस के पात्र में रक्खे हुए दमनक को स्थापित कर पूजा की जाती है । 'कामदेवाय विद्महे' आदि कामगायत्री का उद्धार करके दमनक के अधिवासन का वर्णन है ।

पवित्रार्चा का उत्तम काल आषाढ मास है, मध्यम श्रावण है और भाद्रपद अधमकाल है । देवताओं को अपनी-अपनी तिथि में पवित्रारोपण करना प्रशस्त कहा गया है । पवित्रा सोने, चाँदी, ताँबा या कपास सूत्र की बनाई जाती है । यह सूत ब्राह्मणी द्वारा काता गया होना चाहिए । सूत्र को नवगुणित कर १०८ बार मूल गायत्री से उसे अभिमन्त्रित कर बाँस के पात्र में स्थापित करते हैं । षोडशदल कमल यन्त्र पर आठ रंगों से उसे रंगकर पूजा की जाती है । इस पवित्रा पर ३२ देवों का आवाहन होता है । जयजयकार करते हुए देवता के गले में मूल मन्त्र पढ़कर पवित्रा पहनाने का विधान है । अन्त में आषाढी पूर्णिमा से कार्त्तिकी पूर्णिमा तक सभी के लिए चातुर्मास्य का विधान किया गया है । इस समय कुछ न कुछ नियम का पालन अवश्य करना चाहिए । देवी भागवत में इस काल को 'यमदंष्ट्रा' कहा गया है । वैज्ञानिक बात यह है कि इस समय ऋतु परिवर्तन के कारण अधिक से अधिक लोग रोगग्रस्त हो जाते है । अतः ब्रह्मचर्य एवं आहार-विहार के नियमों के पालन से साधक स्वस्थ रहता है ।

सोलहवें पटल में कुमारी पूजन और शिवा बलि का विधान है । कुमारी साक्षात् योगिनी और पर देवता कही गयी है । कर्म की सिद्धि के लिए साधक को दो से लेकर दस वर्ष तक की कुमारी का पूजन करना चाहिए । अप्राप्त होने पर

सोलह वर्ष तक की पुष्परहिता कुमारी का पूजन किया जा सकता है । कुमारी पूजन का क्रम और उनके मन्त्र का विधान कुमारियों के आयु के हिसाब से किया गया है । साधक कुमारी को पूजा गृह में ले आवे और त्रिकोण में अन्न की बलि देकर कुमारियों के अङ्गों में अक्षत से न्यास करे । उनके पञ्चागन्यास का वर्णन करके वाग्भव (ऐं) आदि बीजों के फल कहे गए हैं । उन कुमारियों के दाहिने ओर शिशु गणेश का तथा बटुक भैरव (पाँच वर्ष के बालक) का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद कुमारी पूजन, कुमारियों के तान्त्रिक नाम के अनुसार मन्त्र पूर्वक गन्धादि से करना चाहिए । उन सुप्रसन्न कुमारियों के अङ्गों में जया, विजया आदि पचास शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । विघ्न के विनाश के लिए अष्ट भैरव एवं क्षेत्रपाल आदि का पूजन करना चाहिए । फिर अष्ट शक्तियों का एवं त्रिकोण में अनङ्गकुसुमा आदि छह देवियों का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद शिवा बलि का वर्णन किया गया है । यह अपने इष्ट देवता की संतुष्टि के लिए किया जाता है । इससे साधक शक्तिमान होता है । भगवति प्रसाधन स्तोत्र का पाठ करके साधक शिवा को प्रसन्न करता है । बलि तीन प्रकार की कही गई हैं—सात्विक, राजस एवं तामस । निवृत्ति मार्ग के साधक फल पुष्प आदि से सात्विक बलि देते हैं । यहीं पर महाकाल संहिता के अनुसार बलि देने वाले के उपयुक्त कूष्माण्ड, दुग्ध पिण्ड (खोवा) आदि द्रव्यों का विधान किया गया है । प्रवृत्ति मार्ग वाले साधक के लिए मृग एवं पक्षियों के बलिदान की बात कही गई है । प्राय: यह बलि क्षत्रिय साधकों के लिए ही विहित है । हिंसा न करने का उपदेश भी यहाँ दिया गया है । आठ प्रकार के हत्यारे नरकगामी होते हैं । वेद में पितर देवता और यज्ञ में यद्यपि हिंसा का विधान है किन्तु यज्ञेतर में अहिंसा ही परमधर्म कहा गया है । अन्त में बलिदान की फलश्रुति का कथन है ।

सत्रहवें पटल में मन्त्रसिद्धि के उपाय एवं सपर्या का वर्णन है । भ्रामण बोधन आदि मन्त्र सिद्धि के सात उपाय बतलाए गए हैं । मन्त्र सिद्धि में कारणभूत मात्रिकाओं से सम्पुटित कर मन्त्र जपना भी अन्य उपाय बतलाया गया है । पुरश्चरण की विधि कहते हुए प्रयोग की तिथियों का विधान किया गया है । यहीं पर पुरश्चरण में बहुत समय न लगे इसलिए प्रशस्त काल चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का विधान है । ग्रहण के समय शाक्त, शैव, विष्णु या गाणपत्य मन्त्र जप से सिद्ध हो जाते हैं । ग्रहण काल में प्रयोग का विधान कह कर पुरश्चरण का अन्य प्रकार का विधान कहा गया है ।

मन्त्र के जप से पुरुष के घर में लक्ष्मी एवं जिह्वा पर सरस्वती एवं हृदय में

लक्ष्मीनारायण का निवास होता है । कण्ठ देश में ब्रह्मा एवं शिव निवास करते हैं। जैसे अग्नि तृण को जला देती है वैसे ही शत्रुओं को जलाकर मन्त्र के देवता साधक की रक्षा करते हैं । नारद पाञ्चरात्र एवं तन्त्रशेखर के अनुसार सिद्धि के चिन्हों को बतलाया गया है । पहले तो बहुत विघ्न आते हैं किन्तु बाद में राजा, प्रभु एवं अत्यन्त मानी व्यक्ति भी अनुरोधपूर्वक उनकी प्रार्थना करते हैं । मन्त्र सिद्ध साधक के हृदय में अत्यन्त आनन्दप्रद दृश्यों का एवं अन्तरिक्ष से मधुर गाजे-बाजे की ध्वनि तथा कर्पूर आदि की तीक्ष्ण सुगन्ध अनायास ही सूँघता है । स्वयं वह तेज में सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है । उत्तम, मध्यम, अधम भेद से सिद्धि तीन प्रकार की कही गई है ।

इसी प्रकार तत्त्वसागर संहिता के अनुसार उत्तम, मध्यम, अधम भेद से पूजा भी तीन प्रकार की कही गई है । वेदार्थों का ज्ञान सात्विक पूजा है । भगवत्तत्त्व के ज्ञाता तपोनिष्ठ राजर्षि द्वारा की गई पूजा राजसी पूजा है । मूर्खों के द्वारा की जाने वाली पूजा तामसी पूजा होती है । इसके बाद विष्णु के उपचार की विधि एवं उनको समर्पित करने वाले पदार्थों का वर्णन किया गया है । एक मनुष्य जितना खा सके उतना नैवेद्य जनार्दन को देना चाहिए ।

योगिनी तन्त्र के अनुसार निर्माल्य का काल बतलाया गया है । ताम्र आदि के पात्र बारह वर्ष के बाद निर्माल्य होते हैं । वस्त्र छह मास के बाद और नैवेद्य समर्पित करने के बाद ही निर्माल्य हो जाते हैं । पत्र, पुष्प, फल एवं जल पर्युषित होने पर नहीं चढ़ाना चाहिए । अनार और बिल्वफल कभी निर्माल्य नहीं होते ।

इसके बाद अट्ठारह उपचार, षोडश उपचार, दश उपचार एवं पञ्च उपचार बतलाए गये हैं । शारदातिलक के अनुसार विष्णु एवं शिव के तथा शक्ति के अलग-अलग गन्धाष्टक द्रव्यों का वर्णन है । ज्ञानमालातन्त्र के अनुसार विहित एवं दोषावह पुष्पों का विधान किया गया है । किस वर्ण के पुष्प भगवती को न समर्पित करे और कौन से फल देव यजन के लिए श्रेष्ठ हैं; यह बतलाया गया है। जपा पुष्प पुष्पों में सर्वदेवमय कहा गया है । इसके मूल में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन और अग्रभाग में शिव का निवास है ।

तुलसी ब्रह्मरूपा एवं सर्वदेवमयी कही गई है । पुष्पों को अधोमुख या ऊर्ध्वमुख चढ़ाने का विधान करके पुष्पों को तोड़ने का काल बतलाया गया है जैसे मध्याह्न में पुष्प न तोड़े । दूषित धूप न जलावे । मिश्रित तैल का प्रयोग दीप में न करे । फिर दीपदान की विधि बतलाकर प्रदक्षिणा का क्रम बतलाया गया है। त्रिपुरा की त्रिकोण परिक्रमा होती है । मानसिक, कायिक एवं वाचिक भेद से नमन तीन प्रकार का होता है । अन्त में पञ्चाङ्ग एवं अष्टाङ्ग प्रणाम की विधि

बतलायी गई है ।

अट्ठारहवें पटल में प्रायश्चित्तादि का निरूपण किया गया है । विहित कर्म न करने पर प्रायश्चित्त किया जाता है । इसी सम्बन्ध में विष्णु के विषय में ३२ अपराधों का विवेचन है । इसके प्रायश्चित्त के लिए दस सहस्र जप का विधान किया गया है । संयोग से शरीर पर पहने हुए कवच के नष्ट हो जाने पर मातृकाओं के पाठ से प्रायश्चित्त कहा गया है । यन्त्र के नष्ट हो जाने पर उसके पूजन एवं पुन: धारण करने की विधि बतलायी गयी है । पूजा काल में यन्त्र के गिर जाने पर प्रायश्चित्त बतलाया गया है । माला के नष्ट होने पर सहस्र जप एवं ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । गुरु के क्रोध करने पर स्वयं उपवास कर गुरु को प्रसन्न करे । भगवान् को बिना निवेदन किए हुए भोजन न करे । शालिग्राम का चरणामृत करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है ।

इसी सन्दर्भ में शालिग्राम के प्रकारों का निर्देश किया गया है । लम्बी सुवर्ण की रेखा के समान आभा वाली बिन्दुत्रय से विभूषित शिला मत्स्य नाम वाली कही गई है जो समस्त भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली होती है । इसके बाद वैष्णवों की द्वादश प्रकार की शुद्धि का निरूपण किया गया है जैसे भगवान के मन्दिर में जाना, उनका चरणोदक एवं निर्माल्य आदि धारण करना । तुलसी ग्रहण करने का दिन इत्यादि का कथन करके ललाट पर तिलक लगाने का विधान बतलाया गया है । लिङ्ग की परीक्षा सूतसंहिता के अनुसार बतलायी गई है । स्वयंभूलिङ्ग, नीलकण्ठ एवं महाकाल आदि गुप्त लिङ्गों के चिन्हों को बतलाया गया है । रुद्राक्ष धारण की विधि एवं तुलसीमाला ग्रहण की विधि बतलायी गई है । किन-किन अङ्गों में कितने रुद्राक्ष की माला धारण करना चाहिए इसका विधान किया गया है । फिर षोडशोपचार के श्लोक मन्त्रों का विधान है ।

उन्नीसवें पटल में मन्त्रों के दोषों एवं उनके शोधन के उपाय आदि का कथन है । मन्त्रों की शुद्धि छह प्रकार के चक्रों से की जाती है । वैष्णवों के लिए तारा चक्र से शुद्धि आवश्यक है । शैवों के लिए कोष्ठ-शुद्धि एवं त्रिपुरा मन्त्र में भी तारा चक्र से शुद्धि करनी चाहिए ।

पिण्ड मन्त्र, तारा विद्या के मन्त्र में, षडक्षर मन्त्र में, प्रासाद, सूर्य, त्रिपुरा, नारसिंह, मालामन्त्र, वाराहमन्त्र, काममन्त्र, अस्त्रमन्त्र, स्त्री से प्राप्त मन्त्र, वेदमन्त्र एवं रत्न से प्राप्त मन्त्र में कोई दोष नहीं होता । साधक के नाम के आदि वर्ण से मन्त्र के आदि अक्षर पर्यन्त संशोधन करना चाहिये । कुलाकुल भेद का कथन करके मन्त्रशोधन कैसे करना चाहिए यह बतलाया गया है । जैसे पार्थिव वर्णों के वारुण अक्षर मित्र हैं किन्तु आग्नेय अक्षर उनके शत्रु हैं ।

राशि चक्र से वर्णों को लिखकर मन्त्रों की शुद्धि का वर्णन है । अश्विनी,

भरणी, कृत्तिका आदि सत्ताइस नक्षत्रों को लिखकर मन्त्र की शुद्धि की जाती है । इनमें नौ नक्षत्र मानुष हैं, नौ नक्षत्र राक्षस हैं और नौ दिव्य नक्षत्र हैं । इनमें योनि मैत्री से मन्त्र की शुद्धि की जाती है । जैसे गौ का शत्रु व्याघ्र है ।

इसके बाद अ क थ ह चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गई है । सोलह कोष्ठक में वर्णों को लिखकर सिद्ध, साध्य आदि से मन्त्र की शुद्धि देखी जाती है। फिर निबन्ध ग्रन्थ के अनुसार साध्य, सिद्धि, साध्य-साध्य, साध्य-सुसिद्ध और साध्यारि से मन्त्र की शुद्धि एवं उनके फल का वर्णन है । सुसिद्धारि मन्त्र कुटुम्ब मात्र का नाशक होता है अत: मन्त्र का संशोधन अवश्य करना चाहिए । फिर अकडम चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गयी है । बारह कोष्ठों में नपुंसक वर्णों को छोड़कर चार-चार के क्रम से मातृका वर्णों को लिखा जाता है और उसी से सिद्धादि क्रम से गणना की जाती है । अन्य प्रकार से मन्त्रांशक अर्थात् जिस कोष्ठ में नाम के वर्ण और मन्त्र के वर्ण एकत्र मिलें उससे सिद्ध-साध्यादि का शोधन समझा जाता है ।

इसके बाद ऋणधन शोधन चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गई है । ऋणधन बराबर होने पर मन्त्र जप किया जा सकता है किन्तु ऋणी मन्त्र का जाप कदापि न करे । शून्य शेष होने पर मृत्यु रूप फल होता है अत: ऐसा मन्त्र ग्रहण न करे । षट्कोण चक्र में नपुंसक स्वरों को छोड़कर अकार से हकार पर्यन्त वर्णों को लिखा जाता है । तदनन्तर नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक संशोधन होता है । शारदातिलक के अनुसार अपने अक्षर और अपनी राशि के द्वारा मन्त्र के अनुकूल न होने पर मन्त्र ग्रहण न करे । इसके बाद छिन्न, रुद्ध एवं पराङ्मुख आदि मन्त्र के उछ्वास दोषों का वर्णन किया गया है ।

बीसवें पटल में दीक्षा विधि एव वास्तु याग का वर्णन किया गया है । दीक्षा ग्रहण का काल निरूपण करके प्रयाग, काशी आदि पुण्य क्षेत्रों में दीक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया है । सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण में मन्त्र दीक्षा के लिए तिथि देश काल आदि का विचार आवश्यक नहीं है । सनत्कुमार संहिता में विभिन्न मासों में प्राप्त दीक्षा ग्रहण का फल बतलाया गया है । आगम कल्पद्रुम के अनुसार विभिन्न तिथियों में ग्रहण की गई दीक्षा के फल का निरूपण है जैसे प्रतिपद में प्राप्त दीक्षा ज्ञान का नाश करती है और पञ्चमी तिथि में प्राप्त दीक्षा बुद्धि को बढ़ाती है ।

तत्त्वसार तन्त्र के अनुसार देवताओं की तिथि का वर्णन है जैसे ब्रह्मा की तिथि पूर्णमासी है और द्वादशी विष्णु की तथा चतुर्दशी शिव की है । इसके बाद विभिन्न वारों में प्राप्त हुई दीक्षा का वारों के अनुसार फल का निरूपण है । इसके

बाद अश्विनी आदि नक्षत्रों में ग्रहण की गई दीक्षा के फल का निरूपण है जैसे पञ्चमी तिथि में कृत्तिका एवं द्वादशी में आश्लेषा नक्षत्र लुप्ता तिथि है । यह देवताओं को भी नष्ट कर देने वाली है । इसके बाद दीक्षा के लिए सोलह योग एवं वव, वालव आदि कर्णों का वर्णन है । दीक्षा ग्रहण में चर राशियाँ न लेकर स्थिर राशि सिद्धिप्रद होती हैं ।

इसके बाद वास्तु निरूपण किया गया है । समतल भूमि पर निर्मित गृह सुखकारक होते हैं । ब्रह्मा से लेकर अदिति पर्यन्त तिरपन देवता उस वास्तु नामक देवता का वध करके उसके शरीर पर संस्थित हैं । अतः उनको बिना बलि दिये हुए गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए । शारदातिलक के अनुसार चौसठ कोष्ठ का मण्डल बनाकर बलि देनी चाहिए । महाकपिलपञ्चरात्र में वास्तु के शरीर पर स्थित देवताओं के स्थान बतलाए गए हैं । अतः उन्हीं स्थानों पर बलि मन्त्रों से उन-उन देवताओं को बलि (अन्न आदि) प्रदान करनी चाहिए ।

देवताओं के आसन मन्त्र कहकर उन देवताओं के स्वरूप का वर्णन किया गया है । जैसे इन्द्र अरुण वर्ण के हैं और आदित्य रक्त वर्ण के हैं । इसके बाद पायस, उरद इत्यादि से विभिन्न देवताओं को बलि देने के लिए श्लोक मन्त्रों का विवेचन है । प्रयोगसार के अनुसार विभिन्न दिशाओं के दिक्पालों को बलि देने का विधान है । गृहारम्भ एवं गृह शान्ति के लिए वास्तु पूजन आवश्यक है ।

मण्डप निर्माण का विधान विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार बतलाया गया है । दिशाओं के ज्ञान की विधि बतलायी गयी है । रात्रि में चित्रा, स्वाती आदि नक्षत्र से प्राची दिशा का ज्ञान बतलाया गया है । यज्ञ मण्डप में पूर्व दिशा में न्यग्रोध का तोरण, दक्षिण में गूलर, पश्चिम में पीपल और उत्तर में पाकड़ का तोरण होना चाहिए । इन्हें 'अग्निमीळे' आदि वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए । मण्डप की आठों दिशाओं में दिग्पतियों के वर्ग के अनुसार ध्वजाओं का आरोपण करना चाहिए । प्रत्येक द्वार पर कलश रखकर उन पर देवताओं की पूजा होती है । ध्वजाहीन मन्दिर में या गृह में असुर पिशाच आदि निवास करना चाहते हैं । किन्तु अग्नि के समान जाज्वल्यमान ध्वजा को देखकर वे उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे सूर्य को देखकर अन्धकार । पताका की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन करके मण्डप या गृह को अलंकृत करने का विधान किया गया है । घर को केले के खम्भे, विभिन्न फलों, दर्पणों एवं पुष्पों से सुशोभित करना चाहिए । इस प्रकार विधिविधानपूर्वक अपने गृह को प्रकाशित रखने से उसमें देवताओं का वास होता है और वास्तु पुरुष को बलि प्रदान करने से भूत-पिशाच आदि देवयोनियाँ प्रसन्न हो जाती हैं ।

इक्कीसवें पटल में कुण्ड एवं वेदीनिर्माण की विधि बतलायी गई है ।

मण्डप के मध्य भाग में वेदी का निर्माण होता है । वेदी पके हुए ईंटों से चौकोर बनानी चाहिए । विवाह में समतल वेदी होती है । राजा के अभिषेक में सर्वतोभद्रा एवं चतुर्भद्रा वेदी का निर्माण करना चाहिए । वेदी पर ब्राह्मणों के द्वारा पुण्याहवाचन कराकर मङ्गलाङ्कुर का रोपण करना चाहिए । यह कार्य यज्ञ के आरम्भ के सात दिन पहले किया जाता है । शारदातिलक के अनुसार परई, पुरवा आदि पात्रों का अंकुरारोपण के लिए प्रयोग करना चाहिए । इनकी ऊँचाई सोलह या बारह अंगुल होनी चाहिए । यह पात्र त्रिदेवमय कहे गए हैं । इन पात्रों में खाद, बालू मिट्टी भरकर पश्चिम में चार पालिका (हाँडी) मध्य में शराव (परई) रखनी चाहिए । बीज वपन के लिए मन्त्र एवं पञ्च वाद्य द्वारा घोष करके मङ्गलाचार पूर्वक ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेना चाहिए । शारदातन्त्र के अनुसार आठों दिशाओं में १. चतुरस्र, २. योनि, ३. अर्धचन्द्र, ४. त्रिकोण कुण्ड, ५. वृत्तकुण्ड, ६. षट्कोण, ७. पद्म एवं ८. अष्टकोण कुण्डों का निर्माण करना चाहिए । अन्त में कुण्ड के फलों का वर्णन तथा उन्हें बनाने की विधि कुण्डसिद्धि तन्त्र के अनुसार बतलायी गई है ।

बाइसवें पटल में सर्वतोभद्र मण्डल बनाने की विधि अत्यन्त विस्तार के साथ कही गई है । इसके बाद पीठ रचना का विधान और उनके रंग एवं स्थान का वर्णन है । इन रंगों के प्रयोग से देवता सन्तुष्ट होते हैं । शारदातिलक के अनुसार नवनाभ मण्डल बनाने की विधि कही गई है ।

तेइसवें पटल में दीक्षाविधि कही गयी है । मन्त्र शब्द में 'म' का अर्थ मनन है और 'त्र' का अर्थ बन्धन से त्राण है । इसलिए मन्त्रदीक्षा दी जाती है । दीक्षा तीन प्रकार की है—१. आणवी, २. शाक्तेयी तथा ३. शाम्भवी दीक्षा । आणवी दीक्षा के बारह भेद और उनके लक्षणों का वर्णन है ।

दिव्य ज्ञान प्रदान कर पापों का क्षय करने के कारण इसे दीक्षा नाम से अभिहित किया जाता है। यह दीक्षा १. क्रियावती, २. वर्णमयी, ३. कलात्मा-दीक्षा और ४. वेधमयी भेद से चार प्रकार की है । शिष्य के विभिन्न अङ्गों में न्यास आदि करके क्रियावती दीक्षा की विधि का विस्तृत विवेचन है ।

चौबीसवें पटल में क्रियावती दीक्षा के प्रसङ्ग में कुण्ड के अट्ठारह संस्कार का वर्णन है । अपने अङ्गों में अग्नि का उपस्थान, उनकी सप्त जिह्वाओं का न्यास एवं अग्नि की जातवेद आदि अष्टमूर्त्तियों का न्यास कर उन्हें मानसिक आसन देने का विधान है । फिर 'अग्नये स्विष्कृते स्वाहा' आदि मन्त्रों से आचार्य होम करे । वस्तुतः इष्टदेवता के मुख में अग्नि के मुखों का अन्तर्भाव होने से एकीकरण किया जाता है । फिर अग्नि, देवता एवं आत्मा इन तीन का नाडीसन्धान (एकीकरण) किया जाता है । फिर अग्नि के अङ्गदेवता एवं उनके

परिवार के अर्चन एवं होम का वर्णन है ।

शिष्य को पञ्चगव्य पिलाकर आचार्य दक्षिण द्वार से यज्ञ मण्डप में लाते हैं । फिर मन्त्राध्वा, तत्त्वाध्वा, वर्णाध्वा (= ये तीन शब्दगत हैं), भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा एवं कलाध्वा (ये तीन अर्थगत हैं)—इन छह तत्त्वों का गुरु शोधन करते हैं । इस प्रकार शिष्य में आत्मचैतन्य का गुरु नियोजन करे । मन्त्र प्रदान के बाद गुरु तीन (२४.१०२-१०४) श्लोकों से देवी से प्रार्थना करते हैं—

ॐ कारुण्यनिलये देवि सर्वसम्पत्तिसंश्रये ।
शरण्यवत्सले मातः कृपामस्मिन् शिशौ कुरु ॥

क्रियावती दीक्षा के बाद वर्णात्मिका दीक्षा का विधान किया गया है । मातृका वर्ण प्रकृति एवं पुरुष रूप हैं । अतः आचार्य शिष्य के शरीर में मन्त्र के वर्णों को स्थापित करते हैं । शिष्य के शरीर में मन्त्र वर्णों को विलीन कर देने से उसका शरीर देवमय हो जाता है ।

फिर कलावती दीक्षा का विधान किया गया है । निवृत्ति आदि पाँच कलाएँ समस्त भूतों की शक्तियाँ हैं । अतः उन कलाओं को आचार्य शिष्य के पञ्चभूतमय शरीर का भेदन कर उसमें प्रविष्ट करा देते हैं ।

वेधमयी दीक्षा में आचार्य कुण्डलिनी का ध्यान कर शिष्य के सुषुम्ना के मध्य परशिव पर्यन्त षड्दल आदि कमलों में मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक वर्णों का वेध करते हैं । इस दिव्य वेध से संयुक्त होकर शिष्य सर्वज्ञ होकर साक्षात् 'शिव' हो जाता है ।

दीक्षा प्राप्त शिष्य को सिद्धि के लिए सदैव सदाचार का पालन करना होता है । अपने समस्त द्रव्य का आधा गुरु को दक्षिणा रूप में प्रदान करे ।

पच्चीसवें पटल में षट्कर्म १. शान्ति, २. वश्य, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेष, ५. उच्चाटन एवं ६. मारण—इन कर्मों के लक्षण एवं देवता आदि कहे गए हैं । षट्कर्म आदि का साधन मन्त्र सिद्धि के लिए विशिष्ट ऋतुओं में ही किया जाता है । षट्कर्मों की दिशाएँ भी निश्चित हैं । अतः उन निश्चित दिशाओं में मुख करके जप किया जाता है । शान्ति कार्य के लिए शुक्लपक्ष की बुध युक्त द्वितीया, देवयुक्त तृतीया तथा गुरुयुक्त पञ्चमी ग्राह्य है । हेमन्त ऋतु का वर्ण धवल है और ये अवस्था में वृद्ध हैं । अतः शान्ति कर्म के लिए हेमन्त ऋतु उपयुक्त है । पुष्टि कर्म के लिए गुरुवार प्रशस्त कहा गया है । पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि आसनों का षट्कर्मों के लिए विधान किया गया है । शान्त्यादि कर्मों में ग्रथन, विदर्भ आदि छह का विन्यास कहा जाता है । पञ्च महाभूतों के अर्धचन्द्र के समान जल का मण्डल होता है जो कि शान्ति-कर्म में प्रशस्त है । जब चन्द्र (इडा)

नाडी जल या भूमि तत्त्व का उदय हो उस समय शान्ति या पौष्टिक कर्म करना चाहिए । नासिका से वायु का परीक्षण करके षट्कर्म किए जाते हैं । इसी सन्दर्भ में षट्कर्मों की पाश, पद्म आदि छह मुद्राएँ कही गई हैं । चन्द्र वर्णों को छोड़कर भूतलिपियों का (वर्ण) प्रयोग करना चाहिए । जैसे सलिलात्मक वर्णों का प्रयोग शान्तिक, पौष्टिक एवं आकर्षण कर्मों में करना चाहिए । नमः, स्वाहा आदि षट्कर्मों की जातियों का विधान किया गया है । विघ्न विनाश तथा ग्रहकृत दोष के निवारण के लिए 'हुँ फट्' का प्रयोग होता है ।

षट्कर्मों में भूतोदय (स्वरोदय) का विचार आवश्यक है । दोनों नासापुटों से प्राणवायु के सञ्चार से जल-तत्त्व का उदय होता है । इसी समय शान्ति-कर्म करना चाहिए । प्रायः शान्ति-कर्म का काल प्रातः उपयुक्त है ।

षट्कर्म में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न द्रव्यों एवं माला विशेष का कथन है । शुभ कार्य के लिए १०८ मणियों की माला होती है । शान्ति एवं पुष्टि आदि कर्मों में बाँए होकर हवन करना चाहिए । ब्राह्मण भोजन के लिए उनकी संख्या का उल्लेख भी कर्मानुसार किया गया है । चन्दन, गोरोचन आदि द्रव्य तथा दूर्वा या मोर पंख की लेखनी का विधान है । शान्ति कर्म में यन्त्र भोजपत्र पर लिखना चाहिए । अन्त में षट्कर्मों के स्थानों का निर्देश भी किया गया है ।

छब्बीसवें पटल में विभिन्न मुद्राओं का विवेचन है । इसके प्रदर्शन से देवता प्रसन्न होते हैं । एक ही मुष्टी से निर्मित विविधाकार की मुद्राएँ यतः देवों को हर्षित करती हैं । अतः इन्हें मुद्रा कहा जाता है । बिना दीक्षा लिए मुद्रा का निर्माण नहीं करना चाहिए । अदीक्षित साधक यदि मुद्रा का निर्माण करता है तो वह शीघ्र ही दरिद्र हो जाता है ।

अर्चन, जपकाल, ध्यान एवं काम्य कर्मों के समय तत्तत्मुद्रा का प्रयोग होता है; जैसे तीर्थावाहन में अंकुश मुद्रा दिखलाई जाती है और रक्षा कार्य में कुन्त मुद्रा का प्रयोग होता है । इस प्रकार मत्स्य मुद्रा तक बारह मुद्रा के लक्षण कहे गए हैं । फिर देवता के आवाहन में प्रयुक्त होने वाली नौ मुद्राओं का विवेचन है ।

विष्णु की उन्नीस मुद्राएँ, गणेश की सात मुद्राएँ बताकर वाग्भव (ऐं) आदि बीजों की मुद्राओं का कथन है । षोडशोपचार में प्रयुक्त होने वाली धूप, दीप, गन्ध एवं नैवेद्य आदि मुद्राओं का विवेचन है ।

सत्ताइसवें पटल में मुक्तात्मा होने वाली 'योगचर्या' का विधान है । योग के बिना कुण्डली का उत्थान सम्भव नहीं है । कुण्डलिनी के सुप्त रहने से मन्त्र, यन्त्र या यजन कर्म में सिद्धि नहीं होती । अतः साधक को नित्य योगाभ्यास करना चाहिए ।

१. **'मन्त्रयोग'** आभ्यन्तर एवं बाह्य रूप से दो प्रकार का है । आभ्यन्तर योग के अभ्यास के लिए सुषुम्ना, विचित्रा आदि नाडियों का ज्ञान आवश्यक है । इन नाडियों पर विभिन्न देवों का निवास है । मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग है । यहाँ काम बीज (क्लीं) का निवास है । कामकला बीज ईं, फिर बिन्दु एवं नाद की स्थिति है । सहस्रार के ऊपर स्रवित होने वाली अमृत धारा से षट्चक्र के देवताओं का तर्पण कर योगी साधक जीवन्मुक्त हो जाता है ।

२. कृष्णद्वैपायन व्यास आदि ने लययोग से सिद्धि प्राप्त की थी । नवचक्रों में आत्मा लय ही **लययोग** है ।

३. जब प्राण अपानवृत्ति को खींचकर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र (गगनाम्भोज) में वह विराजमान होने लगता है तो उसे **'राजयोग'** कहा जाता है।

४. हठयोग दो प्रकार का है—१. मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगियों द्वारा तथा २. मृकण्डु पुत्रादि के द्वारा की गई साधना । हकार का अर्थ सूर्य है और ठकार का अर्थ चन्द्रमा है । जब दोनों ही नाडी समान होती है तब 'हठ' कहा जाता है । यह साधक को मुक्ति प्रदान करती है ।

योग के छह अङ्ग १. आसन, २. प्राणायाम, ३. प्रत्याहार, ४. धारणा, ५. ध्यान और ६. समाधि हैं । इनका वर्णन करके शरीर की स्थिरता के लिए महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर एवं मूलबन्ध का विवेचन किया गया है। रीढ की हड्डी (= पृष्ठबन्ध) को अत्यन्त कड़ा करने को दण्ड-धारण कहा जाता है । यम, नियम आदि आठ योग के अङ्ग हैं और अहिंसा, सत्य आदि दस 'यम' कहे गए हैं । प्राणायाम की अवस्था चतुष्टय का विवेचन कर प्रत्याहार एवं धारणा को बतलाया गया है । धारणा के पाँच प्रकार हैं । ये पञ्चभूतात्मक हैं । अपने चैतन्य को जागृत रखकर आत्मा में देवता का ध्यान होता है । यह मन को निश्चल कर देता है । इस प्रकार ध्यान योग से साधक निष्कल (मायारहित) हो जाता है और हंस मन्त्र का जप कर योगी परमात्मा में लीन हो जाता है ।

अट्ठाइसवें पटल में योगी की चर्या का विवेचन है । योगी भू आदि सात सूक्ष्म धारणाओं को शिर पर धारण करता है । जिसके फलस्वरूप रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि को त्याग कर शब्द ब्रह्म रूप आकाशतत्त्व में प्रवेश करता है। मानसी धारणा से सूक्ष्म में, सूक्ष्म से बुद्धि में और बुद्धि को भी त्याग कर वह परम पद प्राप्त कर लेता है ।

अन्त में भगवती अरुणा से कल्याण की कामना की गई है ।

हठयोग समीक्षा—'आगमरहस्य' में स्वरोदय का परिज्ञान कर ही षट्कर्म में प्रवृत्त होने की चर्चा की गई है । इसके लिए और शरीर शुद्धि के लिए 'हठयोग'

की मूल अवधारणा का ज्ञान अत्यावश्यक है ।

हठयोग का प्रतिपादन घेरण्डाचार्यकृत घेरण्डसंहिता और हठयोग-प्रदीपिका (आत्मारामकृत) इन दो ग्रन्थों में सविस्तर हुआ है । मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ को हठयोग का प्रमुख आचार्य माना गया है । शैव सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय एवं बौद्ध योगाचार सम्प्रदाय में हठयोग की साधना पर बल दिया गया है ।

गोरक्षनाथ कृत सिद्धिसिद्धान्त-पद्धति में हठयोग का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

हकारः कीर्तितः सूर्यः ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥

अर्थात् ह = सूर्यनाडी (दाहिनी नासिका) और ठ = चन्द्रनाडी (बाँयीं नासिका) से बहने वाले श्वासवायु के ऐक्य को ही 'हठयोग' कहते हैं । यह क्रिया अत्यन्त कष्टसाध्य कही गयी है ।

पातञ्जल योग शास्त्र के समान हठयोग शास्त्र के भी विशिष्ट परिभाषिक शब्द हैं । यहाँ घेरण्डसंहिता के अनुसार कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषिक शब्दों का विवरण प्रस्तुत हैं, जिससे हठयोग का स्वरूप अंशतः स्पष्ट हो जाएगा ।

शोधनकर्म—१. धौती, २. बस्ति, ३. नेति, ४. नौली, ५. त्राटक और ६. कपालभाति । इन क्रियाओं को शोधनक्रिया या षट्क्रिया कहते हैं ।

धौति—चार प्रकार—अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन ।

अन्तर्धौति—चार प्रकार—वात्यसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत (या प्रक्षालन) ।

दन्तधौति—चार प्रकार—दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र ।

हृद्धौति—तीन प्रकार—दण्ड, वमन और वस्त्र ।

बस्ति—दो प्रकार—जल और शुक्ल ।

कपालभाति—तीन प्रकार—वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम ।

इस प्रकार 'षट्कर्मों' के छह प्रकार में से तीन के तो प्रकार हैं । किन्तु नेति, नौली और त्राटक के प्रकार नहीं है । इन षट् क्रियाओं से घटशुद्धि (अर्थात् शरीर की निर्मलता) होती है और वह सब प्रकार के रोगों से तथा कफ, वात, पित्त के दोषों से मुक्त होता है । जठराग्नि प्रदीप्त होती है ।

आसनों के सम्बन्ध में कहा है कि उनसे शरीर में दृढ़ता आती है । **'आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः'** सृष्टि में जितने भी जीवजन्तु हैं,

उनकी शरीरावस्था के अनुसार आसन हो सकते हैं । उनमें चौरासी आसन करने योग्य हैं और उनमें भी अधोलिखित बत्तीस आसन उत्तम माने जाते हैं—

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम् ।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानम् उत्कटं सङ्कटं तथा ॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डुकं गरुडं वृषम् ॥
शलभं मकरम् उष्ट्रं भुजङ्गं योगमासनम् ।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च ॥

इनमें सिद्ध, पद्म, भद्र, मुक्त, वज्र, स्वस्तिक, सिंह, मृत, उग्र, गोरक्ष, मकर और भुजङ्ग इन बारह आसनों के विशेष लाभ बतलाये गए हैं ।

१. पद्म, भद्र, स्वस्तिक, सिंह और भुजङ्ग आसन व्याधिनाशक कहे गए हैं । २. मकर और भुजङ्ग आसन देहाग्निवर्धक हैं । ३. पद्म, स्वस्तिक और उग्र आसन मरुत्सिद्धिदायक हैं और ४. सिद्ध, मुक्त, वज्र, उग्र और गोरक्ष आसन सिद्धिदायक बतलाये गए हैं ।

मुद्रा—(कुल प्रकार २५) महाभद्र, नभोमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोलि, शक्तिचालिनी, तडागी, माण्डूकी, शाम्भवी, पार्थिवी-धारणा, आम्भसी-धारणा, आग्नेयी-धारणा, वायवी-धारणा, आकाशी-धारणा, आश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगिनी और भुजंगिनी ।

सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् करने के हेतु मुद्राओं की साधना आवश्यक मानी गई है ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम् ।
ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ॥

हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थापन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है । किं बहुना कुण्डलिनी का उत्थापन ही इस योग का उद्दिष्ट प्रयोजन है । कुण्डलिनी के उत्थान से सर्व सिद्धियों की प्राप्ति और व्याधि तथा मृत्यु का विनाश होता है ।

'प्रत्याहार' से धीरता की प्राप्ति होती है । चञ्चल स्वभाव के कारण बाहर भटकने वाले मन को आत्माभिमुख करना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है ।

प्राणायाम से लाघव प्राप्त होता है । वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में प्राणायाम नहीं

करना चाहिए तथा उसका प्रारम्भ नाडीशुद्धि होने पर ही करना चाहिये । नाडीशुद्धि के लिये समनु प्राणायाम आवश्यक होते हैं । समनु के तीन प्रकार होते हैं—निर्मनु, वातसार धौति का अपर नाम है । प्राणायाम में कुम्भक क्रिया का विशेष महत्त्व होता है । कुम्भक के आठ प्रकार—

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जयी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः ॥
खेचरत्वं रोगनाशाः शक्तिबोधस्तथोन्मनी ।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ॥

प्राणायाम की सिद्धता के तीन लक्षण होते हैं । प्रथम लक्षण शरीर पर पसीना आना । द्वितीय लक्षण—मेरुकम्प और तृतीय लक्षण है भूमित्याग अर्थात् शरीर का भूमि से ऊपर उठना । यह प्राणायाम की उत्तम सिद्धता का लक्षण है ।

खेचरत्व, रोगनाश, शक्तिबोध तथा उन्मनी से चित्त में आनन्द होता है । यह प्राणायम की फलश्रुति है ।

इस शास्त्र में शरीरस्थ वायु के दस प्रकार—'स्थान और क्रिया' भेद से माने जाते हैं ।

हृदयस्थान में प्राण । गुद्स्थान में अपान । नाभिस्थान में समान । कण्ठस्थान में उदान । व्यान सर्व शरीर में व्याप्त होता है । इन पाँच वायुओं के अतिरिक्त, नाग = चैतन्यदायक, कूर्म = निमेषणकारक, कृकल = क्षुधातृषाकारक, देवदत्त = जृम्भा (जम्भई) कारक और धनञ्जय = शब्दकारक होता है ।

ध्यान का फल है 'आत्मसाक्षात्कार' । ध्यान के तीन प्रकार (१) स्थूल-ध्यान—हृदयस्थान में इष्ट देवता की मूर्त्ति का ध्यान । (२) ज्योतिर्मयध्यान—इसके दो प्रकार होते हैं । (अ) मूलाधारचक्र के स्थान में प्रदीपकलिकाकृति ब्रह्म-ध्यान, (आ) भ्रूमध्यस्थान में ज्वालावलीयुक्त प्रणवाकार का ध्यान । (३) सूक्ष्म-ध्यान—शाम्भवी मुद्रा के साथ नेत्ररन्ध्र में राजमार्गस्थान पर विहार करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान । हठयोग के शास्त्रकार सूक्ष्मध्यान का सर्वोत्कृष्ट महत्त्व बतलाते हैं ।

राजयोग के समान ही हठयोग का भी अन्तिम अङ्ग 'समाधि' है । **'घटात् भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कुर्यात् परात्मनि ।'** अर्थात् मन को शरीर से पृथक् कर परमात्मा में स्थिर रखना यह समाधि का एक अभ्यास है, तथा **'सच्चिदानन्द-रूपोऽहम्'** यह धारणा रखना दूसरा अभ्यास है । हठयोग की षडङ्ग साधना की परिणति समाधि की साधना में होती है । घेरण्डसंहिता के अनुसार शाम्भवी, खेचरी, भ्रामरी और योनिमुद्रा की तथा स्थूलध्यान की साधना से समाधि सुख का

लाभ साधक को होता है ।

शाम्भवीमुद्रा में 'ध्यानयोग समाधि' की साधना से दिव्य रूपदर्शन का आनन्द मिलता है । **खेचरी मुद्रा** में 'नादयोग समाधि' की साधना से दिव्य शब्द के श्रवण का आनन्द मिलता है । **योनिमुद्रा** में 'लययोग समाधि' की साधना से दिव्य स्पर्शानन्द का अनुभव आता है। इस प्रकार दिव्य शब्द स्पर्शादि के अनुभव को समाधि सुख कहा है। इनके अतिरिक्त भक्तियोगसमाधि **(स्वकीये हृदये ध्यायेद् इष्टदेवस्वरूपकम्)** और राजयोगसमाधि **(मूर्च्छाकुम्भकेन भ्रुवोरन्तरे आत्मनि मनसो लयः)** मिलाकर समाधि के छह प्रकार माने जाते हैं । हठयोग की सम्पूर्ण साधना किसी अधिकारी मार्गदर्शक गुरु के आदेशानुसार ही करना आवश्यक है, अन्यथा विपरीत परिणाम हो सकते हैं । अर्थात् शरीर शुद्ध न होकर मृत्यु भी सम्भव है ।

आगमरहस्य के उद्देश्य—जो मनुष्य अच्छा या बुरा काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिये काम्य कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये ।

तन्त्रों में यह षट्कर्म विषयासक्त चित्त वालों के लिये प्रकाशित किया गया है जो प्रथम पूर्वाचार्यों द्वारा भी कहा गया है । किन्तु काम्य कर्म कदापि शुभावह नहीं होता । काम्य कर्म में प्रसक्त होने वाले साधकों को केवल उतना ही फल प्राप्त होता है । किन्तु निष्काम देव पूजा कर्म करने वाले को समस्त अभीष्ट प्राप्त हो जाते हैं ।

तन्त्रकार ने प्रत्येक मन्त्र के प्रयोगों को सुखाप्ति के लिये कहा है । किन्तु उत्तम साधक को उस आसक्ति का त्याग कर निष्काम दृष्टि से देवता का स्मरण करना चाहिये । वेद में कर्म, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड कहे गये हैं । जिसमें दो काण्ड साधन कहे गये हैं । तीसरा ज्ञानकाण्ड साध्य है । इसलिये वैदिक रीति से शुद्ध अन्तःकरण से देवता की कर्म और उपासना रूप दो साधन करे । ऐसा करने से उत्तम ज्ञान रूप साध्य अवश्य प्राप्त हो जायेगा ।

यह चेतनात्मक जीव कार्य कारण सङ्घात रूप शरीर में प्रविष्ट हो गया है । वह सम्पूर्ण ब्रह्म ही है । इस प्रकार मन्त्रज्ञ साधक ज्ञान प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाता है । मनुष्य देह प्राप्त कर जो देवता की उपासना कर संसार से मुक्त नहीं होता, वह महापापी है । इसलिये उत्तम मनुष्यों के लिये और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये, सत्कर्म से देवता की उपासना द्वारा कामादि शत्रुओं का नाशपूर्वक सतत यत्न करते रहना चाहिये ।

यहाँ तक ग्रन्थ में आये हुए विषयों का विवेचन किया गया; अब **तान्त्रिक सिद्धि** के विषय में एक **सत्य घटना** का वर्णन प्रस्तुत है—

विषयानुक्रमणिका